ॐ

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 61 जुलाई–सितम्बर 2015 अंक 3

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

(जुलाई-सितम्बर 2015)

क्रमांक		पृष्ठ
1. भजन	*मीराबाई*	01
2. आध्यात्म विद्या कर सार (भाग-9)	*लालाजी महाराज*	02
3. गुरु शिष का अंतरंग प्रेम	*डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज*	07
4. प्रेम व दीनता	*अनमोल वचन*	09
5. परमात्मा आत्मा के भीतर है	*डा. करतार सिंह जी महाराज*	13
6. मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र		19
7. अभ्यासियों के लिए कुछ आवश्यक बातें		26

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 61 जुलाई-सितम्बर 2015 अंक-3

विनती

दे मस्त फ़कीरी वह मुझको, शाहों की भी परवाह न हो।
न तो मैं ही किसी का शाह बनूँ, मेरा भी कोई शाह न हो।।

दुनियाँ दौलत में मस्त रहे, मैं मस्त रहूँ तुम को पाकर।
निर्धनताओं की ज्वाला से, तिल भर भी मन में आह न हो।।

घर घर जाऊँ-पाऊँ पूजा या, जिस घर में अपमान मिले।
दोनों में ही मुस्कान रहे, पर दिल के भीतर दाह न हो।।

परदुख को अपना दुःख समझूँ, पर दुःख न अपना रुला पाये।
पर-सुख को अपना सुख समझूँ, पर अपने सुख की चाह न हो।।

हर रंग रहे इस जीवन में, पर द्वेष न मन में आ जाये।
मन विचरे आनन्द के वन में, पल भर भी कभी गुमराह न हो।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

अध्यात्म विद्या का सार

तौहीद और इस्तग़ना

कबीर साहब गुरु के बारे में फरमाते हैं –

'कबीर वे नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।।

गुरु इष्ट और मकसद (ध्येय) है। उसूल से गिरा हुआ आदमी कहाँ ठहर सकता है? इसलिए गुरु पर सब कुछ निछावर है–

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
चार लोक की सम्पदा, सो गुरु दीनी दान।।

सत्य नाम के पटतरे, देने को कुछ नाहीं।
कह लग गुरु संतोषिये, हबिस रही मन माय।।

सब कुछ गुरु को दे दो। अपना सारा बोझ उनके सिर पर रख दो, फिर आजादी से बिचरते रहो। कबीर साहब कहते हैं–

मन दिया जिन सब दिया, मन के संग शरीर।
अब देने को क्या रहा, यूँ कह रहे कबीर।।

तन मन दिया तो भल किया, जासी सिर का भार।
जो कबहूँ कह 'मैं' दिया, तो बहुत सहेगा मार।।

कहब कबीर वा दास से, निज मन दिया न जाय।
तन मन दिया तो क्या हुआ, कैसे मन पतिताय।।

तन मन दिया जो आपना, निज मन ताके संग।
कहत कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु के परसंग।।

निज मन को नीचा किया, चरण कंवल की ठौर।
कहे कबीर गुरुदेव बिनु, नज़र न आवे और।।

सालिकों (साधकों) के बीच में गुरु की यह हैसियत है। जो ऐसा नहीं समझता है वह मरा हुआ है, वह तौहीद (एकात्म भाव) को क्या ख़ाक समझेगा? गुरु मिले असली तौहीद का पैगाम (सन्देश) सुनने में आया और वह मुवाहिद (एकरूप) बन गया। अब कहना, सुनना झक मारना है। जिसको गुरु नहीं मिला वह तौहीद के कलमें (वचन) सुनकर गुमराह (पथभ्रष्ट) हो गया। 'अहंब्रह्मास्मि और अनहलहक' कहता रहता है और हक़ीकत में न मुवाहिद है और न तौहीद का कायल। कहना ही कहना हाथ में है बाकी ख़ाली है। कबीर साहब कहते हैं–

सत्गुरु पूरा ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वांग यती का पहनकर, घर–घर माँगी भीख।।

इंसान जिस तरफ़ दिल लगाता है वैसी ही बातें उसमें पैदा हो जाती हैं। मसलन फ़ोटोग्राफर ने तसवीर की तरफ़ दिल लगाया, फ़ोटो की ख़ूबसूरती और उसकी असलियत दिल में पैदा हो गयी। मूर्ति बनाने वाले ने मूर्ति में दिल लगाया। मूर्ति के नक्शो–निगार (रूपरेखा) दिल में पैदा हो गये। नजूमी (ज्योतिष) ने इल्म नजूम (ज्योतिष) में दिल लगाया। तमाम चाँद, सूरज व सितारे उसके दिल में जगमगा रहे हैं और वह उनसे अलग कब है? इसी तरह जिसने गुरु को दिल दिया, गुरु उसके अन्दर प्रगट हो गये और वह उनसे मिला हुआ वहदत के दरिया में तैर रहा है। गुरु तौहीद (एकपने) का मकसद है, जो कुछ भी है गुरु है–बाकी और नहीं।

अपने भीतर नूर (रौशनी) देखा। बाहर क्या धरा है? जो कुछ है अपने अन्दर है। हर चीज़ अन्दर से बाहर आती है, इसलिए तौहीद भी अन्दर है। उसे कभी बाहर नहीं ढूंढना चाहिए, जितना निगाह को बहिर्मुखी बनाओगे उतने ही तफर्क (विरोध) ज़्यादा बढ़ेंगे। सब्रो–करार (संतोष व शान्ति) अपने ही दिल में मिलता है। ख़ुशी और इतमीनान की हालत भी अन्दर है। तौहीद हो चुकी। ज़्यादा नहीं तो उसकी कुछ–कुछ मुराद (आशय) ज़रूर समझ में आ गयी होगी।

कायनात (दुनिया) में सब को मिल कर रहना तौहीद है। अगर दिल में तौहीद होने का मौका मिल गया तो तौहीद का समझना आसान है। अगर दिल बेकरार है तो मुश्किल से समझ आयेगी।

सबका मजमुआ (एक साथ रहना) जातवाहिद (एक ज़ात) कहलाता है। न वह कभी किसी से जुदा हुआ और न किसी से मिला। जैसा है वैसा ही है। हाँ, अगर नुक्स और कसूर हो सकता है तो इंसान के ख़्यालों में हो सकता है, क्योंकि वह जैसा सोचता है वैसा बनाता है। एक आदमी पेड़ को देखता है, दूसरा उसको पूजनीय समझता है, तीसरा उसको भूत ख़्याल करता है। चीज़ जो थी अब भी है मगर ख़्याल ने अलग–अलग नाम पैदा कर दिया। लालची को सीप में चाँदी, प्यासे को शराब में पानी, डरे हुए को रस्सी में साँप दिखाई देता है। किसी की आँख में बल होता है यानी एक चीज़ में दो दिखाई देती हैं। ये ग़ल्तियाँ सिर्फ़ दिल में मैल होने व ख़्यालात के नाकिस (छोटे) होने के सबब से हुआ करती हैं।

इसी तरह लोगों ने एक को अनेक मान लिया और वैसा ही कर रहे हैं। चूँकि ख़्याल में दो समा गये हैं इसलिए इंसान द्वैतवादी और मुशरिक (दो के मानने वाले) हो गया है। यह ख्याली बीमारी है जो सिर्फ़ ख़्याल के पुख़्ता करने से ठीक होगी। यही इसका इलाज है क्योंकि यह दोपना भी तो सबब से आया है। हमने तो तौहीद को जैसा हो सका समझा दिया।

इस्तगना (वैराग्य या उपरामता)

अब पाँचवी मंजिल आती है जिसको सूफी लोग इस्तगना, यती मुनि वैराग और योगी निर्विकल्प समाधि कहते हैं। यह सारे शब्द मुश्किल हैं और ग़लतफ़हमी (भ्रम) फैलाते हैं। आमतौर से इस्तगना के मानी बेपरवाही के होते हैं। यह ठीक भी है, मगर ज़्यादा दौलत वाले लोगों को भी ग़नी कहा जा सकता है। तौहीद एक बड़ी दौलत है, जिसे यह मिल गयी वह ग़नी (मालदार) हो गया। मुहताज व निर्धन लोगों में

बेपरवाही नहीं होती। ग़नी (धनवान) में होती है। इसलिए दौलत का घनापन इस्तग़ना कहलाता है।

वैराग्य के माने हैं राग का न होना, मगर वह अदम (न होना) नहीं है, न उसका अभाव है। राग का घनापन हो जाना वैराग्य है। क्योंकि उसी हालत में आकर इंसान तर्क व त्याग के मज़मून (विषय) को समझता है। त्याग किस चीज़ का करना है ? माना, घर छोड़ा, स्त्री छोड़ी, जंगल में आये यहाँ भी वही माया, खाने–पीने–रहने वग़ैरा की ज़रूरतों की शक्ल में मौजूद रहती है। इसलिए जब तक राग (असलियत) का घनापन न हो जाये तब तक वैराग्य नहीं होता। राग का घना होना ही सच्चा वैराग्य है। जब तक यह कमज़ोरी है तब तक कुछ नहीं होगा।

तौहीद के राग का ख़्याल पकाया गया। उसमें पुख़्तगी आ गई। वही वैराग्य हो गया और अब उसमें त्याग व तर्क है। त्याग व तर्क भी नाम है ख़्याल है और बहानों की ऊँची तरक्की का। जब तक इंसान कमज़ोर है तब तक जिस्म की कमज़ोरी उसे सताती है। वह इलाज कराता है और ताकत देने वाले खाने (टॉनिक) खाता है और जिस्म का ख़्याल रखता है। मगर जब वह मज़बूत और ताकतवर हो गया, कमज़ोरी जाती रही तो यह मालूम भी नहीं होता है कि उसके जिस्म है भी या नहीं। पहले वह जिस्म बोझा मालूम होता था, अब उसकी हालत कुछ और ही है और उसकी तरफ से वह बेपरवाह है। यही निर्विकल्प समाधि है, जिसकी शुरुआत सविकल्प समाधि से होती है।

योगी सिर्फ़ उस वक़्त तक योगी है जब तक संयम करता हुआ किसी मक़सद (ध्येय) से मिला है और योग की तमन्ना रखता है। इस तमन्ना के घने होते ही वह और कुछ बन जाता है। ऐसा मालूम होता है कि अब उसमें तमन्ना व योग नहीं रहा। इसी हालत को निर्विकल्प कहते हैं। जब तक हविस (लोलुपता) है, दोपना है। हविस को पक्का हो जाने दो। जब सेरी (तृप्ति) आ गयी, ख़्वाहिश जाती रही तो यही इस्तग़ना (वैराग्य या उपरामता) है और कुछ नहीं।

इस्तगना को संतमत में महासुन्न कहा जाता है। इस मुकाम या

हालत पर पहुँचे हुए लोग हंस या परमहंस कहलाते हैं। जिनमें इस्तग़ना है वे सच्चे मानी में तारकुल दुनियाँ (त्यागी) हैं। यों तो आम लोगों की निगाहों में वे अब भी दुनियाँ में हैं, मगर जिनकी नज़र बारीक है उनको दुनिया की तरफ़ से बेपरवाही दीखती है।

सर बिराहना नेस्तम दारम कुलाहे चार तर्क।
तर्के दुनिया तर्के उकबा तर्के मौला तर्के तर्क।।

अर्थात् मेरा सर नंगा नहीं है, वह चार त्याग की टोपियों में ढका हुआ है। पहले संसार का त्याग, फिर परलोक का त्याग, फिर ईश्वर का त्याग, फिर त्याग के विचार का त्याग।

कौन कहता है कि दुनियाँ छोड़ो। क्या पकड़ोगे और क्या छोड़ोगे? असल में द्वैतवाद के जगत में रहते हुए न गृहस्थ आ सकता है न त्याग, सिर्फ़ दिल की हालत का बदलना है– कि न उसे किसी से प्रेम हो न किसी से द्वेष और यही सच्चा वैराग्य है।

मूड़ मुड़ाये क्या हुआ, किया जो घोटम घोट।
मनुवा को मूड़ा नहीं, जामें सारी खोट।।

●●●

किसे क्या देना चाहिए?

- शत्रु को क्षमा
- मित्र को अपना हृदय
- बच्चों को सुन्दर दृष्टान्त
- माता को आचरण–व्यवहार जिस पर वह गर्व करे
- पिता को आदर सम्मान
- गुरु को निष्ठापूर्ण पूजा, और
- मनुष्य मात्र को सेवामय उपकार

प्रवचन गुरुदेवः डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

गुरु शिष्य का अन्तरंग प्रेम

निराकार, दयालदेश का मालिक और देहधारी गुरु, सब एक ही हैं। सबका समान आदर और एक समान उपासना होनी चाहिए। यह कैसे मुमकिन है कि हम गुरु को प्रेम करें मगर दयाल पुरुष और खानदान के बुर्जुगों से प्रेम न हो। अगर सत्संगी भाईयों में आपस में प्रेम न हो तो यह ज़रूर है कि उन्हें centre (अपने गुरु) से प्यार नहीं है। इसी तरह मज़हबी किताबें हैं, सबमें एक सी ही श्रद्धा हो। कुरान शरीफ़ में एक आयत आई है– ''ऐ मुहम्मद, तेरे जैसे बहुत से पैगम्बर पैदा हुए हैं, जिनमें से बहुत सों की तुझे खबर है और बहुत सों की नहीं है। सब मुसलमानों से कह दो कि सब पैगम्बरों की एक सी इज़्ज़त करें।'' इसलिए सारे अवतारों, सन्तों और धार्मिक ग्रन्थों को समान आदर भाव से देखना चाहिए।

असली candidate यानी जिज्ञासु कौन है? जिसको ईश्वर से मिलने की सच्ची ख़्वाहिश है, और तड़प है, और जिन्दगी से बेज़ार है (ऊब गया है)। मौजूदा हालत चाहे उसकी कुछ भी हो, चाहे वह अच्छे आचरण का हो या न हो, अगर उसमें प्रेम है, तड़प है तो वही उसे हर हालत से निकाल कर ले जायेगी। यह मार्ग प्रेम का है। अगर आपके दिल में गुरु का प्रेम है तो आप उससे प्रेम करेंगे और वह आपसे प्रेम करेगा। जब हालत ऐसी बन जाए कि उससे निरन्तर प्रेम की डोर लगी रहे और हर वक्त उसका ख़्याल बना रहे अगर ऐसा अभ्यासी गुरु के दर्शनों को न भी जाये तो भी हर्ज़ नहीं है, लेकिन जिनको अभी ऐसा प्रेम पैदा नहीं हुआ है और फ़ायदा उठाना चाहते हैं तो यह ज़रूरी है कि तीन चार महीने में एक बार गुरु के पास जाते रहें। कुछ वक़्त भले ही ज़्यादा लग जाये लेकिन फ़ायदा होगा। प्रेम की और गुरु से नाता जुड़ने की

पहचान यह है कि जो ख़्याल गुरु के दिल में पैदा हो वह शिष्य पर उतर जाये। फ़िर उस ख़्याल को ख़त के ज़रिये या मिलने पर confirm (पुष्टि) कर लें। इसका मतलब यह है कि शिष्य का निजी रूप जागृत अवस्था में आ गया है और गुरु की तालीम (शिक्षा) क़बूल कर रहा है। लेकिन एक बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि कितना ही आपका अनुभव खुल जाये, अन्दर से कितने भी directions (आदेश) मिलें लेकिन शैतान बड़ा ज़बरदस्त है। वह कहीं भी धोखा दे सकता है। इसलिए अभ्यासी चाहे कितना भी ऊँचा हो और ख़्याल से गुरु की कितनी भी नज़दीकी हो, उसे physically (स्थूल रूप में) गुरु के दर्शन साल में दो बार अवश्य कर लेना चाहिए। आपके सिलसिले में बल्कि हर एक सिलसिले में गुरु की बहुत importance (महत्ता) है। गुरु के निजी रूप का (प्रकाश रूप का) नूरानी रूप का ध्यान किया जाता है। चाहे ध्यान में पहले उसका physical body (स्थूल शरीर) दिखता हो मगर वह नूरानी (प्रकाश रूप) है। अगर गुरु की तस्वीर का ध्यान करते हो तो यह तो मूर्ति पूजा हो गई। जिसका ध्यान करोगे वही मिलेगा। अगर तस्वीर या मूर्ति का ध्यान करते हो तो मरने के बाद वही मिलेगी इज़्ज़त के तौर पर घर में तस्वीर का रख लेना और बात है। सामने बैठकर भी जो ध्यान किया जाता है वह उनके नूरानी रूप (प्रकाश रूप) का किया जाता है। वह प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है और आगे जाकर सत्पुरुष से मिला देता है।

(दि. 10. 5. 1969)

●●●

सरवर तरुवर सन्तजन चौथा बरसै मेह।
जग तारन के कारणे चारों धारैं देह।।

–संत कबीर

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

प्रेम व दीनता

जहाँ देखने की, चिपटाने की या छूने की चाह है, वहाँ इन्द्रियों का प्यार है। हमारे मन की इच्छायें जिससे पूरी हों वह मन का प्यार है। जहाँ न ख्याल है, न गरज़ है न और कुछ, सबका भला ही भला चाहता है, वही सच्चा प्यार है। ऐसे प्रेम में प्रेमी ईश्वर को अपने से अलग नहीं मानता है। जहाँ ऐसा प्यार है वहाँ तक़दीर और तदबीर कुछ नहीं चलती। वह जो चाहे सो कर सकता है।

❖❖❖❖

जब तक Lover और Beloved (प्रेमी और प्रीतम) का प्यार, पतिव्रता पत्नी और पति का प्यार या और कोई प्यार सब इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक सच्चा वियोग नहीं होता और जब ऐसा वियोग हो जाता है तब पुकारने से ईश्वर मिलता है। सब चीज़ छोड़कर एक ईश्वर से प्रेम करो। मन जहाँ–जहाँ फँसा हुआ है वहाँ से खेंच कर, उसकी बिखरी हुई शक्तियों को बटोर कर एक ईश्वर के चरणों में लगा दो। उसके ख्याल में और उसके प्रेम में ऐसे तल्लीन हो जाओ कि सिवाय उसके और किसी का ध्यान न रहे। यह दुनिया तो जैसी है वैसी ही रहेगी और इसका कोई काम बन्द नहीं होगा। हमें इससे क्या, हमें तो अपने प्रीतम से काम है।

❖❖❖❖

आत्मा पतिव्रता स्त्री की तरह है। या तो वह सोई रहती है और मन काम करता है, या वह ईश्वर से प्रेम करेगी, सिवाय उसके किसी और से प्रेम नहीं करेगी।

❖❖❖❖

अगर सच्चा प्रेम है तो ईश्वर ख़ुद ही खिंचा चला आता है।

❖❖❖❖

असली जिज्ञासु कौन है ? जिसको ईश्वर से मिलने की सच्ची ख़्वाहिश है और तड़प है और ज़िन्दगी से बेज़ार है (यानी ऊब गया है)। मौजूदा हालत चाहे उसकी कुछ भी हो, चाहे वह अच्छे आचरण का हो या न हो, अगर उसमें प्रेम है, तड़प है, तो वही उसे हर हालत से निकाल कर ले जायेगी। यह मार्ग प्रेम का है। अगर आप के दिल में गुरु का प्रेम है तो आप उससे प्रेम करेंगे और वह आप से प्रेम करेगा।

❖❖❖❖

जब मनुष्य के सब आपे दूर हों, सिवाय परमात्मा के और किसी का भरोसा न हो तब प्रेम की उच्च अवस्था प्राप्त होती है और वही पूर्ण दीनता की अवस्था है।

❖❖❖❖

परमात्मा के प्रेम के आते ही बुराईयाँ दूर होने लगती हैं और आख़ीर में सिवाय उसके प्रेम के और कुछ नहीं रहता, यही मोक्ष और मुक्ति है।

❖❖❖❖

प्रेम चाहे किसी दुनियादार से हो या ईश्वर से, उसमें कोई गरज़ नहीं होनी चाहिए। जहाँ ग़रज़ होती है उसे प्रेम नहीं कहते, वह सौदे–बाज़ी है। गुरु से प्रेम करो और कुछ न चाहो। अपने मन से पूछो कि क्या चाहते हो और जबाब मिले कि कुछ नहीं चाहते हमारा प्रीतम ख़ुश रहे, बस यही चाहते हैं। हमारा रास्ता प्रेम का रास्ता है। प्रेम में जहाँ गरज़ शामिल हो जाती है वहीं रास्ता बंद हो जाता है।

❖❖❖❖

ईश्वर प्राप्ति के दो ही रास्ते हैं – एक प्रेम का और दूसरा दीनता का। जिस साधन या अभ्यास से यह दोनों पैदा न हों वह रास्ता गलत है।

❖❖❖❖

जो बीज ईश्वर प्रेम का एक बार पड़ गया वह जाता नहीं मगर बढ़ता है तो सिर्फ़ इंसानी चोले में।

❖❖❖❖

ईश्वर के पास दीनता नहीं है (वह बेनियाज़ है)। जो कोई दीन बन कर उसके दरबार में जाता है, उसे वह मिलता है। सन्त सदा उसके दरबार में हुजूरी के साथ हाज़िर रहते हैं इसीलिये वह सदा सन्तों में मूर्तिमान रहता है। संतों के चरणों में रहने से दीनता और दीनबन्धु दोनों मिलते है।

❖❖❖❖

परमात्मा की हज़ारों सिफ़ात यानी गुण हैं जिनमें सच्चाई और प्रेम दो ख़ास हैं। जो व्यक्ति परमात्मा की नज़दीकी चाहता है उसको चाहिए कि दोनों चीज़ें अख़्तियार करे। बगैर इन दोनों के उस तक पहुँच पाना नामुमकिन है।

❖❖❖❖

मुहब्बत जब मंज़िले तकमील से गुज़र (पूर्णता को प्राप्त हो) जाती है तो इस्तग़राक (लय) की शक़्ल अख़्तियार कर लेती है।

❖❖❖❖

किसी ऐसे महापुरूष का सहारा लो जो रास्ता चल चुका हो। केवल इतना करो कि संसार भर की चीज़ों में जो तुम्हारा प्रेम बँटा हुआ है उसे समेट कर उसके चरणों में लगा दो। यही गुरु धारण करना है।

❖❖❖❖

पहले पहल तो गुरु प्रेम एक साथ नहीं होता, धीरे धीरे बढ़ता है। जहाँ हम अपने माता पिता, भाई, रिश्तेदारों वग़ैरा को प्यार करते हैं उतना ही शुरू में हम गुरु से करें। फिर जब गुरु की महिमा को समझने लगते हैं, प्रीति और प्रतीत होने लगती है, तब आहिस्ता आहिस्ता अपना विश्वास ख़ुद ही बढ़ता जाता है। इसी को Consciousness (आत्म जागृति) कहते हैं।

❖❖❖❖

सबसे पहले स्थूल से स्थूल को यानी शिष्य को गुरु के बाहरी शरीर से प्रेम होता है और वह स्थूल सेवा पसन्द करता है, जैसे पाँव दबाना,

नहलाना धुलाना, कपड़े साफ करना इत्यादि। इससे उसका मन शुद्ध होने लगता है और वह सूक्ष्म हालत पर आने लगता है। गुरु जो ख़्याल करते हैं शिष्य उसे कबूल करने लगता है, यह मन का प्रेम है। यह प्रेम जब और बढ़ने लगता है तब गुरु और शिष्य 'एक जान दो क़ालिब' हो जाते हैं यानी शरीर तो दो अलग दिखाई देते हैं लेकिन अंदर से वे एक होते हैं। यहाँ शिष्य की बुद्धि गुरु में लय हो जाती है, यह बुद्धि का प्रेम है। इसके बाद शिष्य को कारण यानी ईश्वर से प्रेम होने लगता है। वह उसी को अपना सब कुछ मानता है, लेकिन दुई बाकी रहती है। इसके बाद जब प्रेम और बढ़ता है तो वह आत्मा का प्रेम कहलाता है। यही प्रेम की इन्तहा यानी पराकाष्ठा है। वह सब चीज़ों में, चाहे वे जानदार हों या बेजान, अपनी ही आत्मा देखता है। सबको समान रूप से प्रेम करता है।

❖❖❖❖

दूसरों के कथित अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। अपनी त्रुटियाँ देखनी चाहिए और उनका सुधार करना चाहिए। इससे दीनता आती है।

❖❖❖❖

जितनी आत्मा मन के फन्दे से निकलती जाती है उतना ही अनामी पुरुष के लिये प्रेम जागने लगता है। जितना प्रेम बढ़ता जाता है उतनी ही आत्मा सत्पुरुष में लय होती जाती है। आत्मा सत्पुरुष में लय होकर ज़िन्दा रहती है। यही असली रूहानी ज़िन्दगी है, यही निर्वाण पद है।

●●●

युद्धभूमि में एक योद्धा हजारों बार हजारों इंसानों पर विजय पा सकता है, परंतु सच्चा योद्धा वही है जो खुद पर विजय पा लेता है।

भगवान बुद्ध

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

परमात्मा आत्मा के भीतर में है, कहीं दूर नहीं ...

प्रत्येक मनुष्य दुविधा में रहता है। परमात्मा का रास्ता इतना सरल नहीं है जितना हम समझते हैं। तब भी जैसे माँ अपने बच्चों को खिलौने से खिलाती है ऐसे ही महापुरूष जिज्ञासु को प्रेरणा देते रहते हैं।

परमात्मा कोई दूर नहीं वह आपके भीतर और बाहर है। जहाँ जाओगे वहीं परमात्मा मिलेगा। बात तो सत्य है। परन्तु वास्तव में यदि हम स्वनिरीक्षण करके देखें तो हमने इस वाक्य को जो सब ग्रन्थों में है और सब महापुरूषों ने अपनाया है कि **परमात्मा सर्वव्यापक है, भीतर भी और बाहर भी है,** उसकी अनुभूति नहीं की है। जीवन का लक्ष्य है, अपना मूल पहचानना। मनुष्यों को कहते हैं ''हे जीव! अपनी वास्तविकता को पहचान''। उसके लिये प्रेरणा देते हैं कि हम अपना जीवन पवित्र करें, व्यवहार में शुद्धता लायें, मन को अति कोमल बनायें। शुद्ध प्रेम का जीवन होना चाहिए। महापुरूषों के से प्रेम का जीवन होना चाहिए। जीवन को अहं ब्रह्मअस्मि के अनुसार बनाना होगा।

परमात्मा आत्मा के भीतर में है, कहीं दूर नहीं है। जिज्ञासु जो सुनता है, पढ़ता है और समझता है कि ''तू आत्म स्वरूप है, परमात्मा भीतर में है अति समीप है, तू उसे पहचान!'' इसके लिए ऊँची पहाड़ियों पर जाने की ज़रूरत नहीं है। किसी महापुरूष को ढूँढिये जो स्वयं ईश्वर स्वरूप है और उसने परमात्मा को पहचान लिया है और अनुभव कर लिया है। वह ही आपको भी इसका अनुभव करा देगा। ईश्वर 'सत् संग' है, सत् का संग करो। ईश्वर रूप महापुरूष के पास बैठने से सत् की, आत्मा की, अनुभूति जल्दी होगी। अपने भीतर में देखिये, अपने जीवन को दूसरों के

जीवन में देखिये। इस वक्त प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का शोषण कर रहा है और अपने आप को सत्संगी कहलाता है।

साधना करनी होगी, साधना किस की करनी है? ... अपने मन की!

''मन के साधे सब सधे''

मन तामसिक विचारों में फँसा है, सत्यता से कहीं दूर है। सात्विक विचार आने चाहिए। इसके साथ–साथ कोमलता आनी चाहिए, दीनता आनी चाहिए, सरलता आनी चाहिए, अहंकार रहित स्थिति बननी चाहिए।

महापुरूष के पास बैठ कर वैराग्य हो जाये या वैराग्य की स्थिति आ जाये, सहज हो जायें, बल नहीं लगाना पड़े, परमात्मा के गुण आ जायें।

''तू तू करता तू भया, ...मुझ में रही न हूँ।
आपा फिरका मिट गया, ...जित देखूँ तित तू''

सत्संग का यही महत्व है, सत्य का संग हो। किसी महापुरूष के पास सत्य ही सत्य है, आत्मा ही आत्मा है, उसके पास बैठने से ही हमारे हृदय में सत्यता जागृत हो जाती है।

जो विज्ञान के विद्यार्थी हैं वे जानते हैं कि शक्ति बिना प्रयास के विकसित होती रहती है। प्रभु का सत्य भी अपने आप विकसित होता रहता है। तनिक सा भी उस ओर ध्यान देंगे, उसकी रश्मि सूर्य की रश्मियों की तरह आप पर बिना मेहनत के वृष्टि करेंगी और आप अंतर बाहर जैसा ईश्वर है वैसा बन जायेंगे। संत के पास बैठना सत् पुरूष के पास बैठने के समान होता है। जो सत्संग कराता है, साधना कराता है, वह स्वयं ईश्वर का भंडार है। उसके भीतर से जो रश्मियाँ निकलती हैं वे सत्संगी में परिर्वतन ला देती हैं। सत्संगी को गुरु जैसा बना देती हैं।

सत्संग ही सर्वश्रेष्ठ साधना है ईश्वर की प्राप्ति के लिये, अहंकार से मुक्त होने के लिये, संसार की कीचड़ से निकलने के लिये। उस व्यक्ति में कोमलता आ जाती है, निर्मलता आ जाती है, दीनता आ जाती है,

मधुरता आ जाती है, ऐसा आनंद आता है, कि वहाँ से उठ कर कहीं जाने का मन नहीं करता। यही सच्चा सत्संग है।

गुरु महाराज में यह गुण था और विशेष रूप से इसी गुण ने मुझे उनके चरणों में आने का अवसर दिया। अधिकांशतः मैं उनके साथ बाहर जाया करता था। हम लोग गोरखपुर पहुँचे हुए थे, तभी एक दिन आदेश दिया कि ''सारा दिन हो गया बैठे–बैठे चलो घूम आयें''। मुझे उस स्थान से परिचय नहीं था, किसी ने मुझसे कहा कि यहाँ पर गुरु गोरखनाथ जी का मंदिर है जो बहुत सुंदर है। मुझसे गुरुदेव ने कहा ''जाइये आप अंदर जाइये, दर्शन कर आइये!'' मैं गुरुदेव के आदेशानुसार अंदर गया, वहाँ पता लगा कि यहाँ एक महान ऋषि रहते हैं जिनका नाम बैनर्जी साहब था। मैंने कहा चलो दर्शन कर लेते हैं, हाँलाकि सभी सत्संगियों, शिष्यों को बिना आज्ञा के किसी के यहाँ भेजते नहीं। मेरे मन में भी यह बात आयी कि 'गुरुदेव क्या कहेंगे ?' तब भी मैं उनके आदेशों का पालन न करते हुए बैनर्जी साहब के दर्शनों के लिये उनके चरणों में पहुँच गया। मैं वहाँ बैठा, ऐसा आर्किषत हो गया, शाम हो गयी, सूर्य अस्त होने को था, मेरा साथी कहने लगा बहुत देर हो गई है। मैं उनके समीप बैठा हुआ था। गुरुदेव ने बताया हुआ था कि महापुरूषों का आदर कैसे करना चाहिए। अब बिना पूछे मैं हट नहीं सकता था। वे आँख बंद करके बैठे थे, मेरे मन में उत्सुक्ता हुई के ये आँख खोलें तो मैं आज्ञा लूँ। गुरुदेव की कृपा हुई। उन्होंनें आँखें खोली, मेरी ओर मुखातिब होकर कहा ''शाम हो गई है, आपको दूर जाना है, अब आप जायें।'' मैंने वापस पहुँच कर गुरुदेव को सारी बात बताई, वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले 'कल शाम को हम भी चलेंगे' दूसरे दिन आकर हम सब बैनर्जी साहब के पास बैठे। जहाँ दो विभूतियाँ बैठी हों वहाँ की स्थिति बड़ी ऊँची होती है। जिसने इसका अनुभव किया हो वही वर्णन कर सकता है, दूसरा नहीं। बड़ा आनंद था। कुछ देर बाद बैनर्जी साहब ने कहा मैं अब आराम करूँगा आप अब जाइए। गुरुदेव ने फिर आज्ञा ली, मैंने भी आज्ञा ली। रास्ते में गुरुदेव ने

फरमाया ''यह अवस्था महान थी, ...पिछले जन्म में ये कोई महान संत थे या देवता थे।'' हम लोग एक महीना गोरखपुर में रहे, गुरु महाराज मेरे साथ रोज़ वहाँ बैनर्जी साहब के पास जाया करते थे। ऐसे लोग देश में हैं। यदि ऐसे लोगो का सत्संग मिल जाये और जैसा आपने गुरबानी में सुना है, ऐसे व्यक्ति के मिलने पर कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। केवल उनके पास बैठना, उनके जीवन का अनुसरण करना और उनके आदेशों का पालन करना है।

बाद में कुछ परिस्थितियों वश गुरु महाराज ने गोरखपुर जाना बंद कर दिया, मुझे अकेला भेजते थे। कहते थे ''जाओ कुछ दिन बैनर्जी साहब की सेवा में रहो।'' बहुत प्रेम प्रदान करते थे और ऐसी प्रेरणा देते थे कि मनुष्य उनसे दूर नहीं होना चाहते थे।

सत्संग का अर्थ है सत् का संग। ईश्वर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है। जो व्यक्ति पवित्र मन का होगा, उसके पास बैठने का मन करता है और इच्छा होती है कि बैठे ही रहें। जो अच्छे संत होते हैं वे ईश्वर के समान होते हैं। उनके हृदय से आत्मा की रश्मियाँ निकलती हैं। यह आत्म प्रसादी है।

गुरु नानक साहब ने यहीं से शुरू किया था अपना उपदेश। ईश्वर का नाम लिख दिया 'ओंकार'। परमात्मा एक है 'ओंकार'। ओंकार में गुरु नानक साहब ने एक और शब्द और लिख दिया ''सत्'' 'सतगुरु तेरी कृपा से ओंकार की प्राप्ति हुई है। सत् स्वरूप आत्मपूर्ण संत मिल जाना चाहिए'। मिल गया प्रभु।

''सत् पुरूष तिन जानया सत् गुरु नाम''

सत्पुरूष की जिसने अनुभूति कर ली हो वह सत्गुरु है। संत कहने वाले को दीन बन कर सेवा करनी चाहिए। इतना ऊँचा स्थान कम ही प्राप्त होता है।

एक बार हम डलहौज़ी गये, गुरुदेव के साथ बहुत से सत्संगी और भी गये थे। डाक्टर साहब के दोनों बच्चे भी साथ थे, मुझसे बोले 'जाओ घूम आओ'। घूमते–घूमते हम एक जगह पहुँचे जहाँ एक गुफा में एक बंगाली

संत रहते थे। हम लोग उनके दर्शनों के लिये अंदर गये और उनके पास जा कर बैठ गये। उनके पास बैठने से वही स्थिति हुई जो बैनर्जी साहब के पास बैठने से हुई थी। डॉ. श्याम लाल जी के सुपुत्र अभी दीक्षित नहीं हुए थे, उनके दोनों पुत्र हमारे साथ घंटा दो घंटा बैठे। वापस लौट कर गुरु महाराज को बताया, उन्होंने कहा 'चलो हम भी चलेंगे'। वे उन संत के पास गये, पहला दिन था, वहाँ गुरु महाराज ने आदेश दिया 'डॉ. साहब के दोनों बच्चों को आप अपने पास बिठायें और तवज़्ज़ो दिया करें'। गुरु महाराज की बड़ी कृपा थी, उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी, हमें अपने जैसा बनाया, अकेले मुझे ही नहीं और भी कई लोगों को।

ईश्वर से प्रार्थना है कि आपको सच्चे संतों का मिलाप हो जाये। गंगा स्नान, तीर्थों की यात्रा इसीलिये किये जाते है, वहाँ पुराने ज़माने के उच्च कोटी के संत, महात्मा मिलते हैं। वे संसार का परित्याग करके ऊँचे स्थानों पर चले जाते हैं ताकि सच्चा एकांत मिल सके। प्रयास करें अपने जीवन को शुद्ध, पवित्र बनाने का, आत्मा जैसा बनाने का, परमात्मा जैसा बनाने का। इसके लिये सरल रास्ता यही है कि जिस महापुरूष ने अपने आपको ऐसा बना लिया हो, उसका संग करें। यही सत्संग है। सत्य का संग, ईश्वर का संग है। ईश्वर के भक्त भी सच्चे ईश्वर स्वरूप हैं। हमारे सत्संग का भी तरीका यही है। यही सबसे सरल और कल्याणकारी रास्ता है।

जीवन में क्या करना चाहिए, सभी महापुरूष प्रेरणा देते हैं कि सच्चे संतों का सत्संग करना चाहिए। उनके शरीर छोड़ने के बाद में जो स्थान उनकी याद में बनाये जाते हैं जैसे अमर नाथ जी आदि, बहुत अच्छी बात है, वहाँ शुद्ध वातावरण होता है, वहाँ हमेशा आत्मिक वृष्टि होती रहती है। जितने उच्च कोटी के ऋषि होते हैं वे उच्च स्थानों पर जाते हैं। बद्रीनाथ जी बहुत ऊँचे स्थान पर है।

आपसे निवेदन है कि कृपा करके अपने आपको सदगुणों से अलंकृत करें। प्रेम के रंग में रंगिये, अपने पाँचों शरीरों को आत्मिक ज्ञान से रंगें और सच्चा साधन यानी संतों का सत्संग करें।

हम इतने कसूर करते हैं जिनकी गिनती नहीं है। कृपा करो। कुछ उपाय करो। भगवान राम ने पत्थरों को भी पानी में तैरा दिया था। महापुरूष क्या नहीं कर सकते। सरलता, दीनता, कोमलता, मधुरता, आत्मिकता आदि ऐसे गुण मनुष्यों को अपनाने चाहिए।

पूज्य गुरुदेव आप सब पर कृपा करें।

(13 जुलाई 2003)

❑❑❑❑

धन्य हैं वे

- जो भले होने के कारण सताये जाते हैं ..... क्योंकि स्वर्ग का राज्य उनका है।
- जिनके मन शुद्ध हैं..... क्योंकि वे परमेश्वर का दर्शन करेंगे।
- जो दयालु हैं..... क्योंकि उन पर दया की जायेगी।
- जो शांति के लिए प्रयत्न करते हैं..... क्योंकि वे परमेश्वर के पुत्र कहलायेंगे।
- जो विनम्र हैं..... क्योंकि समस्त संसार उनका है।
- जो दीन हैं..... क्योंकि स्वर्ग का सुख उन्हें दिया जायेगा।
- जो शोक–ग्रस्त हैं..... क्योंकि उनको शांति दी जायेगी।

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

अबु उस्मान हमरी

तपस्वी अबु उस्मान हमरी खुरासानवासी थे। वे कुलीन वंश के साहसी, उत्तम वक्ता, अद्वितीय तत्ववेत्ता और महामान्य संत थे। खुरासान में सन्यास धर्म का उन्होंने प्रचार किया था। महर्षि जवानिद यूसुफ अबुल हुसेन, मुहम्मद फज़ल, माननीय महर्षि इयहा तेजस्वी शाहशुजा और अबु हाफिज़ आदि की उन्होंने संगति की थी। नषापुर में उन्होंने उपदेश पाठ की स्थापना की थी जहाँ वे आध्यात्मिक विषयों पर प्रवचन किया करते थे। अपने पूर्व वृतान्त के बारे में उन्होंने स्वयं कहा है – ''बाल काल से ही मेरा अन्तःकरण तत्व प्राप्ति के लिये उत्सुक था। संसार प्रेमी लोगों का समागम मुझे रूचता ही नहीं था। मेरे मन में यही विचार उठता रहता कि ये लोग जिन वस्तुओं की प्राप्ति के लिये परेशान हो रहे हैं उनसे भी अधिक महत्व की कोई वस्तु होनी चाहिए और आगे जा कर मालूम हुआ कि वह वस्तु है 'धर्म'।''

बाल्यावस्था में वे एक बार विद्यालय में जा रहे थे। वे बहुमूल्य वस्त्र पहने थे। साथ में तीन चार नौकर भी थे। रास्ते में उन्हें एक गधा दिखाई दिया, उसकी पीठ पर एक बड़ा सा घाव था और कौए उसमें चोंच मार रहे थे। उन्हे बड़ी दया आई, अपनी पगड़ी उतार कर उसके घाव पर पट्टी बंधवा दी और अपनी कीमती शाल उसे उढ़ा दिया।

उस दिन उस्मान लौट कर घर नहीं गये, पर महर्षि इहया के पास उपदेश के लिये गये। महर्षि के उपदेश से उनके हृदय के कपाट उन्मुक्त हो गये। माता पिता की आज्ञा लेकर उसी दिन से वे महर्षि इहया की सत्संगति में साधना करने लगे। शाहशुजा का नाम सुन कर, महर्षि से आज्ञा प्राप्त करके वे केरमान गये।

बीस दिन तक द्वार पर पड़े रहने के बाद शाहशुजा ने उस्मान को अपने पास आने दिया। उसके बाद बहुत समय तक शाहशुजा की संगति में रह कर उन्होंने बहुत फ़ायदा उठाया। बाद में वे शाहशुजा के साथ ही नषापुर लौटे। वहाँ महात्मा अबुहाफिज़ से उनकी मुलाकात हुई। हाफिज़ ने उस्मान पर प्रसन्न हो कर उन्हें अपने पास रख लिया। उनके पास रह कर उस्मान ने अच्छा धर्म ज्ञान प्राप्त किया। अबु उस्मान स्वयं कहते हैं– ''मेरे धर्म गुरु अबु हाफिज़ ने मुझे अपनी जवानी में ही घर से यह कह कर बाहर निकाल दिया – कि जब तक मैं न बुलाऊँ, लौटकर न आना'' मुझे इस आज्ञा से बहुत दुख हुआ। गुरु को छोड़ना अच्छा नहीं लगता था, पर आज्ञा पालन तो आवश्यक था। उनकी तरफ देखते–देखते उल्टे पाँव रखकर मैं रोता–रोता उनकी दृष्टि से ओझल हो गया। गुरु के घर के सामने एक खंडहर था मैं उसी में छिप गया। गुरुजी बाहर आते जाते तो मैं छिप कर उनके दर्शन करता। मैंने निश्चय कर लिया था कि चाहे शरीरांत हो जाये पर इस जगह से टलूँगा नहीं। गुरुजी को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने मुझे बुला भेजा। मुझ पर अत्यंत प्रसन्न हो कर उन्होंने अपनी कन्या के साथ मेरी शादी कर दी।''

एक दिन एक धर्मद्रोही मनुष्य ने तपस्वी अबु उस्मान हमरी को भोजन के लिये आमंत्रित किया। उस्मान समय पर उनके घर गये। उन्हें देखकर वह मनुष्य बोलने लगा – ''बेवकूफ भुखमरे, यहाँ अपने बाप की धन दौलत रख कर गया था क्या, जो दौड़ा दौड़ा खाने चला आया है ? जा भाग जा यहाँ से।''

बिना कुछ कहे–सुने उस्मान लौट पड़े। वे कुछ कदम ही गये थे कि उस मनुष्य ने उन्हें आवाज़ दी। वे लौटे और वह मनुष्य फिर बोला –''खाने का खूब लालची दिखता है, ले यह पत्थर खा।'' उस्मान फिर लौट गये, उसने फिर बुला कर कटुवचन कहे। इस प्रकार तीस बार उन्हें बुला कर उसने उनका अपमान किया तो भी तपस्वी के मनोभावों मे ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा। अंत में उस मनुष्य की हार हुई, वह उस्मान के पैरों पर गिर कर

रोने लगा। उसने जब उस्मान की इस विलक्षण सहनशीलता की प्रशंसा की तो उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा – ''इसमें कौन सी बड़ी बात है, कुत्ते का भी तो यही स्वभाव होता है। दुतकारने पर भी वह 'तू तू' करते पूँछ हिलाता चला आता है, उसे हर्ष अथवा विषाद होता ही नहीं। मैंने तो कुत्ते का सा काम किया है, इसमें प्रशंसा की क्या बात है।''

एक दिन रास्ते में जाते समय उनके सिर पर एक आदमी ने कोयले की टोकरी उड़ेल दी। तपस्वी के प्रशंसक एकत्रित हो उस आदमी को बुरा भला कहने लगे तो उन्होंने कहा – ''भाईयों इस कार्य के लिये तो इस आदमी को धन्यवाद देना चाहिए। जिसके सिर पर धधकती अग्नि की वर्षा होनी चाहिए, उस पर तो इसने ठंडे कोयले ही फैंके है। यह तो महान उपकार है।

अबु उमर ने कहा है, ''महात्मा उस्मान की सत्संगति से पिछले अपराधों का प्रायश्चित किया तो सही, पर फिर मेरे मन में पापवृत्ति जागी। मैं उन्हें छोड़ कर जाने के लिये उद्धत हो गया। मैं जाने लगा तो उन्होंने कहा 'भाई तुझे जाना है तो सुख से जा, किन्तु सावधानी के लिये तुझे कह देता हूँ कि दुर्जनों की संगति मत करना, कारण – वे सदैव तेरी बुराईयों को खोजते रहेंगे। निश्चय जान, तुझे पाप कर्म में पड़ा देख कर वे प्रसन्न और धार्मिक कार्य में लगा देख कर निराश होंगे। यदि तुझसे कोई पापाचरण भी बन पड़े तो निःसंकोच भाव से मेरे पास चले आना, मैं यथाशक्ति तुझे मुक्त करने का प्रयत्न करूँगा।' ऐसे स्नेह भरे वचन सुन कर मेरी पापवृत्ति शांत हो गई और मुझे बहुत ही पश्चाताप हुआ।''

एक दिन एक दुराचारी युवक 'रबाब' नाम का बाजा हाथ में लेकर मतवाले की तरह रास्ते में झूमता चला आ रहा था। अकसमात् तपस्वी हुसैन से उसकी मुलाकात हो गई। वह युवक लज्जित होकर अपना बाजा कपड़ों में और अपनी जुल्फें टोपी में छिपाने लगा। वह डरा कि यह महात्मा मेरे चरित्र को जान गया होगा, परन्तु महात्मा उसके पास जाकर दयाद्र हृदय से बोले, ''डर मत भाई! हम सब तो एक से हैं'' युवक उनकी यह

बात सुनकर पानी–पानी हो गया। उस्मान उसे अपनी कुटिया में ले गये। स्नान करवा कर उन्होंने उसे दूसरे वस्त्र दिये। फिर दृष्टि उठा कर बोले– ''हे प्रभु! मुझसे तो जैसा बन पड़ा है, मैंनें किया है, बाकी का सारा काम तुझे ही करना होगा।'' ईश्वर कृपा से युवक के हृदय में भक्ति का भाव उदय हुआ। संध्या की नमाज़ के समय अबु उस्मान मगरबी ने उस युवक को देखकर कहा –''महात्मा हमरी! मुझे तो तुम्हारे सौभाग्य पर ईर्ष्या होती है। जिस अवस्था के लिये मैं दीर्घकाल से आतुर हूँ, वह इस युवक को अनायास प्राप्त हो गई, अभी तो इसके मुँह से सबेरे पी हुई मदिरा की दुर्गन्ध तक नहीं गई है।'' अबु उस्मान बोले ''प्रभु कृपा का आधार कार्य पर ही नहीं किन्तु भाग्य पर भी है। यह कृपा मानुषी नहीं, किन्तु ईश्वरीय है।

एक मनुष्य ने उनसे पूछा – महात्मन्! मेरी जीभ तो भगवान का जप करती है, पर मन तो उस ओर नहीं लगता। मैं क्या करूँ?

महर्षि ने उत्तर दिया – 'भाई एक इन्द्रिय तो वशीभूत हुई, इसी से खुश हो। एक अंग ने उत्तम मार्ग पकड़ा है तो एक दिन मन भी ठीक रास्ते पर आवेगा ही।'

फरगन देश से एक युवक मक्का की यात्रा करके नषापुर में आया और तपस्वी अबु उस्मान हमरी से मिलने गया। पर महात्मा ने उनका सलाम स्वीकार नहीं किया। इस पर वह कहने लगा – 'एक मुसलमान, एक मुसलमान भाई की सलाम मंजूर नहीं करे तो यह कैसा अन्याय? इसके उत्तर में महात्मा बोले –''तू ने अपनी माँ को दुखित अवस्था में छोड़ कर यह यात्रा की है, तुझे यह फलप्रद नहीं हो सकती।'' इतना सुन कर वह युवक पश्चात्ताप करता–करता शीघ्र अपनी माता के पास पहुँचा और माँ की सेवा में तन मन से लग गया। माता की मृत्यु के बाद जब वह अबु उस्मान के पास आया तो उन्होंने उसे बड़े प्यार से अपने पास रख लिया। युवक ने बड़ा अज़ीज़ी से महर्षि से उनके जानवर चराने का काम मांगा। वह युवक उनका मुख्य शिष्य हुआ।

उपदेश वचन

1. सदा विनय और प्रेम पूर्वक ईश्वर का भजन करो। धर्म का अनुकरण और पूज्य भाव से सिद्ध पुरूषों का समागम करो। सेवा और सम्मान पूर्वक साधु जनों का सत्संग करो। प्रफुल्ल बदन से निर्दोष भातृ–मण्डलों के साथ रहो। अज्ञानी लोगों के साथ दयाल हृदय और नम्र वाणी से पेश आओ और घर के लोगों के साथ सज्जनता तथा सुशीलता पूर्वक व्यवहार करो।
2. ज्ञान की बातें सुनकर जो साधक उनका आचरण करता है, उसी के अन्तःकरण में ज्ञान–ज्योति प्रकट होती है। किन्तु जो सुनकर भी आचरण नही करता उसका ज्ञान तो बातों ही में रहता है।
3. अपना दोष कोई नहीं देख पाता। अपना व्यवहार सभी को अच्छा मालूम देता है। किन्तु जो मनुष्य सब हालत में अपने को छोटा समझता है, वह अपने दोष भी देख सकता है।
4. मान अपमान, कृपा–अकृपा इन सबको एक समान बिना मनुष्य में सम्पूर्णता नहीं आती।
5. तीन प्रकार के मनुष्य हैं। – 1. जो ज्ञानी ज्ञान भक्ति की बात ही कहता है। 2. जो साधक लौकिक वस्तुओं में आसक्ति रहित होता है। 3. जो ऋषि अलौकिक रीति से ईश्वर की प्रशंसा करता है।
6. ईश्वर ने जिसे परमार्थ ज्ञान में श्रेष्ठ बनाया है, वह पाप में पड़ कर अपना पतन न होने दें, यह उसका पहला कर्तव्य है।
7. इन चार बातों से जीव का कल्याण होता है। ईश्वर के प्रति दीनता, सब पदार्थो से निःस्पृष्यता, ईश्वर का ध्यान और विनय।
8. ईश्वर के न्याय से सदा डरो और उसकी कृपालुता से आशावान बनो।
9. अन्न, वस्त्र देने वाले की अपेक्षा तत्वज्ञान देने वाले का अधिक उपकार मानो।

10. विनय के तीन मूल हैं– अपने अज्ञान का स्मरण, अपने पाप का स्मरण और अपनी त्रुटियों तथा आवश्यकताओं के लिए भगवान से निवेदन।

11. जो मनुष्य लोगों के आगे लज्जित और ईश्वर के सामने निर्लज्ज है उसकी बातें शायद ही सच हों।

12. जो आने वाले कल की चिंता बिना प्रभु में रत रहता है, वही सच्चा सहनशील है।

13. उत्साह प्रेम का फल है। जिसमें सच्चा प्रभु प्रेम होता है वही उसके दर्शन के लिए उत्सुक रहता है।

14. जो आलस्य का डर नहीं रखता वह प्रेम की मधुरता का रसास्वादन नहीं कर सकता।

15. ईश्वर से डरना भाग्यशाली बनने का लक्ष्य है। पाप करते रहकर भी ईश्वर की दया की आशा रखना दुर्भाग्य की निशानी है।

16. जो मनुष्य विपत्ति के आने से पहले ही उसे रोकने का उपाय करता है, वही ज्ञानी है।

17. तुम अपनी सांसारिक इच्छाओं की कैद में बन्द हो, उससे छूटने के लिए यदि सब प्रकार से अपने आपको प्रभु के चरणों में अर्पित कर दोगे तो तुम्हारी रक्षा होगी और तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा।

18. जब तक तुम संसार से सुख शांति की आशा रखोगे ईश्वर के प्रति विश्वासी, संतोषी नहीं बन सकोगे। यदि तुम सांसारिक भयों से डरोगे तो तुम्हारे मन में ईश्वर का डर नहीं समा सकेगा। यदि तुम दूसरे की आशा रखोगे तो ईश्वर की आशा निष्फल होगी।

19. जो मनुष्य ईश्वर के सिवाय न किसी से डरता है न किसी की आशा रखता है, जिसे अपने सुख संतोष की अपेक्षा प्रभु का संतोष अधिक प्रिय है, उसी का ईश्वर के साथ मेल है।

20. ईश्वर का भय तुम्हें उसके पास ले जायेगा, बाकी दम्भ और अभिमान तो तुम्हें उससे दूर ले जायेगें।

21. दूसरों का तिरस्कार करना और उन्हें नीचा मानना तो बड़ा भारी

मानसिक रोग है। जब तक बुरे आचरण शुरु नहीं होते मनुष्य अपनी प्रकृति में स्थिर रहता है। किन्तु दुराचरण शुरु होते ही भला आदमी भी नीच प्रकृति वाला बन जाता है।

22. इन दो बातों को अपना परम शत्रु समझो–धन का लोभ, लोगों से मान पाने की आकांशा।

23. ईश्वर का जो गुणगान तुम अपनी जिव्हा से करो उसकी सत्यता के विषय में यदि तुम्हारा हृदय और आचरण साक्षी देता है तो ईश्वर के प्रति तुम्हारा प्रेम शुद्ध गिना जायेगा।

24. ईश्वर के प्रति वृत्ति रखने से उन्नति ही होगी। इस मार्ग में कभी अवनति तो सम्भव ही नहीं।

●●●

पूज्य गुरुदेव की चेतावनी

सत्संग में तो शामिल हो गये पर गुरुमुख न बने और मनमानी करते रहे तो इसका कुछ न कुछ तो फ़ायदा होगा। लेकिन इसको इस तरह समझो कि ऐसा आदमी उस वक्त भूख से बेताब था और खाना सामने आते ही सो गया। खाने का सब सामान रखा है पर वो बेहोश सो रहा है। न उसको अपनी भूख की सुध है और न खाने के सामान की ख़बर। जब उसकी नींद उचटेगी और जाग जायेगा तो पहले नाक़िस (निकृष्ट) कर्मों का असर दूर होकर उसे आप से आप होश आयेगा। तब ही वो सत्संग के नियमों की क़दर करेगा और भूख मिटाने के लिए कोशिश करेगा। इस समय तो वो सो रहा है। दुनियाँ की तपन से बचा हुआ ज़रूर है, लेकिन मन का घाट नहीं बदला है तो सत्संग के असली फ़ायदे से महरूम (वंचित रह) रहा है।

परमसंत सद्गुरु डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज द्वारा बताई गई संतमत के सत्संगियों एवं अभ्यासियों के लिए कुछ आवश्यक बातें

प्रेमी अभ्यासियों के लिए कुछ बातें संतों ने आवश्यक बताई हैं जो निम्नानुसार हैं :–

1. अभ्यास के समय अभ्यासियों को चाहे गुरु स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन हो या न हो, उन्हें अपनी सुरत को सत्गुरु के स्वरूप (शब्द प्रकाश या गुरु स्वरूप, जैसा जिसे बताया गया हो।) पर जमाना चाहिए और यदि उनके मन में उस स्वरूप के प्रति थोड़ा भी प्रेम है तो यह उनसे सुगमता से हो सकेगा।
2. कोई–कोई अभ्यासी यह चाहते हैं कि पहले हमको अंतर में दर्शन मिलें तब हम ध्यान करें। उनकी यह चाह अनुचित तो नहीं है परन्तु इससे यह मालूम होता है कि उनमें जैसा चाव होना चाहिए वैसा नहीं है और विरह तथा प्रेम की कमी है। प्रभु की ऐसी मौज मालूम नहीं होती है कि हर किसी को उसकी इच्छानुसार जब वह चाहे तभी उसको गुरु स्वरूप के दर्शन हों। इसलिए सभी अभ्यासियों के लिए यह उचित है कि पहलें चाव बढ़ायें और उसी चाव के अनुसार स्वरूप का अनुमान करके अपना अभ्यास करें। दर्शनों की प्राप्ति मालिक की मौज पर छोड़ दें। संत सद्गुरु अत्यंत दयालु होते हैं। वह जब–जब और जैसे–जैसे जिसके लिए मुनासिब होगा समय–समय पर किसी को जल्दी और किसी को कभी–कभी स्वरुप के दर्शन देते रहेंगे।
3. आन्तरिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि सुरत पर मैल न चढ़ने पाये, उसका दिन रात निखार होता चले और वह अपने प्रीतम परमात्मा की राह में तेजी से बढ़ती चली जाये। इसके लिए ज़रूरी यह है कि सत्गुरु का सत्संग जल्दी–जल्दी मिलता रहे। यदि सत्गुरु दूर हों, जल्दी–जल्दी उनके पास न जा सकें,

या उन्होंने शरीर छोड़ दिया हो या किसी अन्य कारण से उनका सत्संग जल्दी न मिल सके तो जो कोई प्रेमी सत्संगी उनसे मिला हुआ हो, साधना कर रहा हो और उनका मंजूरे नज़र हो अर्थात् उस पर उनकी विशेष कृपा और प्यार हो, उसके संग से भी परमपिता परमेश्वर अभ्यासी की सुरत को अपने श्री चरणों में लगावेंगे, अन्तर तथा बाहर का परिचय देकर उसकी प्रीति और प्रतीति बढ़ायेंगे जिनसे उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो जायेगा कि मालिक ने उसे अपनाया है और दिन प्रतिदिन उसकी सुरत का निखार करते जा रहे हैं।

4. अभ्यासी को खासकर उस अभ्यासी को जो चाहता है कि उसकी सुरत को एकदम ऊपर चढ़ा दिया जाये, या कोई चक्र खोल दिया जाये, यह जान लेना आवश्यक है कि सुरत की धार से यह सारा पिण्ड शरीर चैतन्य है। जैसे–जैसे सुरत की धार इस पिण्ड शरीर में से सिमट–सिमट कर ऊपर को चढ़ेगी वैसे ही वैसे यह शरीर उससे खाली होता जायेगा। दूसरे शब्दों में यह समझ लीजिए कि जिस सुरत की धार से यह पिण्ड शरीर संचालित है उस धार के ऊपर खिंच जाने से इसके संचालन पर प्रभाव पड़ेगा। यदि एकदम सुरत ऊपर खिंच जायेगी तो यह शरीर को सहन नहीं होगा और संभव है कि कुछ शारीरिक नुकसान हो जाये या शरीर ही छूट जाये। किन्तु यदि धीरे–धीरे सुरत का चढ़ाव ऊपर को होगा तो उसमें शरीर का कुछ हर्ज नहीं होगा।

5. अधिकतर लोग मन के स्थान पर हैं और उनकी सुरत मन में फँसी हुई है। यदि मन शुद्ध नहीं हो पाया है, वह अभी सात्विकी नहीं हो पाया है (यानी तम से रज और रज से सत् पर नहीं आ पाया है) तो वह सुरत के साथ चढ़ाई नहीं कर सकेगा। यदि अभ्यासी का आचरण (सूफ़ी भाषा में इख़लाक) दुरुस्त नहीं हुआ है तथा उसके मन की गढ़त नहीं हुई है, वह सात्विकी नहीं हुआ है तो ऐसी सूरत में सुरत को एकदम ऊपर चढ़ाने से नुकसान हो जायेगा। यदि

सुरत को एकदम ऊपर चढ़ा दिया जाये और सत्गुरु अपनी कृपा से ऐसी मेहर करें कि शारीरिक नुकसान न भी हो तो भी यह बात अभ्यासी के हित में नहीं है। ऐसे अभ्यासी का मन एकांगी यानी एक तरफा हो जायेगा।

6. इसीलिए संतमत में इस बात पर बल दिया गया है कि दुनियाँ की चीजों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोग कर उनसे उपराम होकर उन्हें छोड़ते चलो। इससे दुनियाँ भी निभ जायेगी और दीन भी बनता चलेगा। जिस चाल में दीन और दुनियाँ दोनों का ही नुकसान हो ऐसी चाल संतजन नहीं चलाते। वे अभ्यासी को धीरे–धीरे चलाकर धुर मंजिल पर पहुँचा देते हैं, रास्ते में अटका कर नहीं छोड़ देते। अतः अभ्यासियों और सत्संगियों को चाहिए कि ऐसी जल्दी न करें कि जिसमें उनका काम बिगड़े। जैसे–जैसे संत सत्गुरु कभी–कभी रस और आनन्द तथा कभी–कभी विरह और बेकली देकर चलावें उसी तरह चलता जाये। सूफी संतों ने कहा है कि अभ्यासी को मुरीद बन जाना चाहिए। मुरीद का अर्थ है ''मुर्दा''। जैसे मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है, उसी तरह अभ्यासी को चाहिए कि अपने आपको सत्गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण कर दे। जब–जब उचित हो तब–तब अपनी उन्नति के लिए सत्गुरु से निवेदन कर दें परन्तु निराश होकर अभ्यास में सुस्ती और ढील न आने दें तथा सत्गुरु और परमपिता परमेश्वर के प्रति अपने प्रेम को रूखा, फीका न होने दें।

7. मनुष्य का मन जन्म–जन्मान्तर से अपनी असली मातृभूमि को भूला हुआ है और इस पिण्ड देश की माया और उसके पदार्थों में लिपट कर उलटी चाल चल रहा है, यानी बजाय ऊपर को चलने के नीचे की तरफ चल रहा है। इसकी गढ़त और सफाई होनी चाहिए, जब तक सफाई नहीं होती यानी जब तक यह तम से हटकर रज पर और रज से हटकर सत् पर नहीं आ जाता तब तक गुरुजन अभ्यासी के आंतरिक चक्षु नहीं खोलते। उसकी सुरत को सामान्य

रूप से चढ़ने में सहायता अवश्य करते रहते हैं। जैसे–जैसे मन की सफाई होती जाती है और सुरत ऊपर चढ़ने लगती है वैसे–वैसे रास्ता साफ होता जाता है। जब मन की पूरी तरह सफाई और गढ़त हो जाती है तथा अभ्यासी को ऊँचे चक्रों के आनन्द को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है तब सत्गुरु दया करके अंशतः आंतरिक चक्षु खोलते हैं और शक्ति प्रदान करते हैं कि उन चक्षुओं से अंदर का जलवा देखे और उसे देखकर सृष्टिकर्ता सर्वाधार मालिक के प्रति प्रेम बढ़े। सत्गुरु तो अपनी ओर से चाहते हैं कि शिष्य को सब कुछ दे दें किन्तु शिष्य के पात्र में तो जगह ही नहीं होती, भरें किसमें ? मन शुद्ध होना ही पात्र में जगह होना है। ज्यों–ज्यों पात्र बनता जायेगा, सत्गुरु की कुपा से लबालब होता जायेगा। अंतर के चक्र खुलने लगेंगे, उनका गहरा आनन्द अनुभव होने लगेगा और परमपिता परमेश्वर की सच्ची महिमा को समझने योग्य हो जायेगा।

8. जब तक अभ्यासी की ऊपर बताई गई स्थिति न हो जाये तब तक उसे चाहिए कि वह धैर्य के साथ पूर्ण विश्वास, प्रीति और प्रतीत के साथ अपना अभ्यास किये जाये और आहिस्ता–आहिस्ता अपनी आंतरिक उन्नति का आभास करता जाये। इसकी पहचान यह है कि उसके मन में दिन प्रतिदिन सत्गुरु और परमपिता परमेश्वर के चरणों में प्रीति और प्रतीति गहरी होने लगेगी। दुनियाँ से उपरामता और सत्गुरु के जल्दी–जल्दी दर्शन करने की लालसा बढ़ती जायेगी।

9. अभ्यासी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भगवान से सिवाय उनके चरणों में प्रीति के और कुछ न माँगे, हाँ बहुत मज़बूरी में रोटी कपड़ा या दुनियाँ के किसी ज़रूरी काम के लिए निवेदन कर देने में कुछ हर्ज नहीं है। इसके अलावा दुनियाँ की और–और बातों के लिये मांग करना अनुचित है और भक्ति के नियमों के प्रतिकूल है। जब सत्गुरु के सामने बैठें और पूजा समाप्त हो जाये तो

धीरे से निवेदन कर दें पर यह न चाहें कि वे उस इच्छा को अवश्य पूरा कर दें। उनकी मौज पर छोड़ दें। यह नहीं सोचना चाहिए कि मांगना बिल्कुल ही मना है किन्तु यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि मांग पूरी न हो या सत्संगी की इच्छानुसार कार्य पूरा न हो तो सत्गुरु से विमुख न हो जायें।

10. ध्यान के समय कभी कभी कोई चिंता या तकलीफ़ ऐसी सामने आती है कि पूजा में मन नहीं लगने देती। उसके लिये यह करना चाहिये कि ख़्याली तौर पर पूजा आरम्भ करने से पहले उस चिंता या तक़लीफ को सदगुरु से निवेदन कर दें और यह ख़्याल करके उधर से निश्चिंत हो जायें कि मैंने अपनी ओर से निवेदन कर दिया और चूँकि मैं तो उनका हूँ, उन्हीं के आश्रित हूँ, अतः अब वे ही जाने। ऐसा करने से उस चिंता और तक़लीफ का भार मन पर से हल्का हो जायेगा। फिर अपने मन और सुरत को समेट कर जितना बन सके सत्गुरु स्वरूप या शब्द या दोनों में लगा दें। ऐसा करने से पूजा में मन भी लगता है और तकलीफ सहने की ताकत भी प्राप्त होती है।

11. संतमत में राज़ी ब रज़ा (यथा लाभ संतोष) का नियम है। इसका तात्पर्य यह है कि जो मालिक को वास्तव में मानते हैं और उसके सच्चे भक्त हैं वे अपनी किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखते। सांसारिक वस्तुओं से अपना गहरा सम्बंध नहीं रखते और उस अर्न्तयामी को अपना सच्चा सहायक और हितैषी समझ कर निश्चिंत रहते तथा सदा सर्वदा उसी के आश्रित रहते हैं। जो कुछ मालिक की मर्ज़ी से होता है उसी में राज़ी और प्रसन्न रहते हैं। उसके चरणों के प्रेम में निरन्तर मग्न रहते हैं और उस प्रेम के आंनद का रसपान करते हैं। इस प्रकार की रहनी सहनी उत्तम भक्ति के नियमों के अंर्तगत आती है। परन्तु ऐसी स्थिति प्रत्येक अभ्यासी की एक दम नहीं हो सकती। इसके लिये समय चाहिए। धीरे–धीरे अभ्यास और सत्संग से तथा सत्गुरु की भक्ति से इस स्थिति तक पहुँचा जा सकता है। ज्यों ज्यों सांसारिक विचार कम होते जायेंगे, यहाँ

के बंधन ढीले होते जायेंगे और सत्गुरु की दया और कृपा का भरोसा होता जायेगा त्यों त्यों पूर्ण प्रेम की स्थिति आती जायेगी। कोई बुरा तथा पाप कर्म न करके और अपना व्यवहार सत्गुरु की आज्ञानुसार ठीक करता चले और उनकी आज्ञा का उल्लंघन न करे, यानी आचरण और सदाचार ठीक रखे, उसका व्यवहार धर्मशास्त्र के अनुकूल हो और वह गुरु का आज्ञाकारी शिष्य हो।

12. जब जिज्ञासु उपरोक्त बातों का पालन करने लगता है तो गुरु अपनी कृपा से उसके पिछले कर्मों को काटते चलते हैं। बलायें, आफतें और कष्ट जो अभ्यासी को अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के फलस्वरूप आती हैं, उन्हें सत्गुरु अपनी दया से या तो टाल देते हैं या इतनी कर देते हैं जैसे सुई का काँटा। बहुत से कर्म अभ्यास के समय और बहुत से स्वप्न में भुगतवा देते हैं जिनकी खबर भी अभ्यासी को नहीं पड़ती। इसलिये चाहे किसी भी अवस्था में हो सत्गुरु को हमेशा धन्यवाद देता रहे, उनका शुकराना करता रहे। सत्गुरु अत्यंत दयालु होते हैं। उनका सम्पर्क निरन्तर दया के सागर परमपिता परमेश्वर से रहता है, उसकी अनुपम दया का रसपान वे स्वयं करते हैं और उसका हिस्सा उन लागों को भी देते हैं जो सत्गुरु के सम्पर्क में आते हैं। ऐसी दया सत्गुरु की ओर से गुप्त रूप से और प्रकट रूप दोनों प्रकार से होती है।

13. प्रेमी अभ्यासी को चाहिए कि यदि वह अभ्यास तथा भजन में रस और आनंद लेना चाहता है तो अपना सांसारिक व्यवहार और परमार्थिक बरताव दोनों को सत्गुरु की आज्ञा में ढाल दें। जो सत्गुरु कहें गाँठ बांध कर उसका पालन करें। दूसरी आवश्यक बात है कि अपने स्वार्थ के लिये विशेष-कर साधारण जीवन में भी कोई काम ऐसा न करें जिससे दूसरों को दुख और तकलीफ पहुँचे। सबके साथ प्रेम पूवर्क रहें, सब से दया का व्यवहार करें।

14. सब मतों में यह पुकार पुकार कर कहा गया है कि परमात्मा के चरणों में सच्ची प्रीति करो। सब साधन इसीलिये किये जाते हैं कि

परमात्मा के चरणों में प्रेम पैदा हो जाये। संतमत का आधार ही प्रेम है। अतः इस मत में परमार्थ के मामले में मालिक के चरणों में प्रीति और प्रतीत को सर्वप्रथम रखा गया है तथा उसी को मुख्यता दी गई है। बिना प्रेम के न तो मालिक की कृपा प्राप्त हो सकती है और न अभ्यास ठीक से बन सकता है। परमपिता परमेश्वर के प्रति प्रेम पैदा करे तथा वक्त के पूरे गुरु के चरणों में प्रीति और प्रतीत पैदा करे और अपने आप को उनके आश्रित कर दे। संसार की फिज़ूल बातों में न पड़ें, भोग विलास से दूर हट जायें, अपनी बढ़ाई और प्रसिद्धि को विष की तरह त्याग दें, अपने हृदय की मलीनता को दूर करता जाये जिससे अभ्यास और भजन में बाधा न पड़े और सतगुरु के बताये हुए मार्ग में दृढ़ता पूर्वक अग्रसर होता जाये।

15. ऐसी पुस्तकें पढ़ें जिनमें संतों की वाणी हो, जिससे प्रेम उभरे और मन को चेतावनी मिले। उन्हें समझ–समझ कर पढ़ें और उनमें लिखी हुई बातों पर मनन करें। ऐसा करने से ईश्वर प्रेम तो बढ़ता ही है, साथ ही साथ अपनी बुराईयों पर भी नज़र (दृष्टि) जाती है और उन्हें दूर करने में सहायता मिलती है। जितने समय तक वह पुस्तक पढ़ता है उतने समय के लिये दुनियाँ के ख़ुराफ़ात (बुरी बातों) से बचता है।

बाकी का अगले अंक में...

इधर से तोड़ो उधर से जोड़ो

महात्मा कबीर एक दिन कपड़ा बुन रहे थे। एक जिज्ञासु उनके पास आया और बोला, ''परम पिता से जुड़ जाना चाहता हूँ महात्मन्''। कबीर उसकी बात सुनकर मुस्कुराए और बोले, ''तो फिर जुड़ जाओ।'' उस व्यक्ति ने जिज्ञासा की, ''मगर कैसे ?'' कबीर ने करघे के एक धागे को तोड़ कर दूसरी ओर जोड़ते हुए कहा, ''इस तरह – इधर से तोड़ो, उधर से जोड़ो।''

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस

9 – रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद – 201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301